International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 90-91

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 90-91
© 2015IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 08-09-2015
Accepted: 12-10-2015

डॉ. राका शर्मा
Reader, संस्कृत विभाग,
एन०के०बी०एम०जी० कॉलिज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल के काव्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ. राका शर्मा

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2015.v1.i7b.1942

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विरचित अधिकांश साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख है। राष्ट्रीय शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है जिसमें जाति, सम्प्रदाय, धर्म, सीमित भू–भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर भिन्न–भिन्न भूखण्डों, सम्प्रदायों और रीति–रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट सामूहिक रूप उभरता है। हमारे कतिपय साहित्यकार भी देशवासियों में बसी स्वदेशप्रेम की सुप्तभावना को अपनी साहित्य सर्जना द्वारा जागृत किया करते हैं।

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के प्रास्ताविकम् में डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने राष्ट्र भावना के आधार को स्पष्ट किया है।

संस्कृत साहित्य में 'राष्ट्रिय भावना' के लेखक डॉ० हरिनारायण दीक्षित ने राष्ट्रीय भावना के स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है– ''अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवनदर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का जो नैसर्गिक स्वाभिमान हुआ करता है, उसे ही हम राष्ट्र की संज्ञा देते हैं।''

श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल जी के काव्यों में राष्ट्र के प्रति गौरव एवं प्रेम सर्वत्र दिखायी देता है। कवि राष्ट्र की भूमि, पर्वतों, वनों, सरिताओं, सागर, तटों, तीर्थस्थलों, संस्कारों एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के द्वारा राष्ट्रीय भावों को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है–

सुधोपमैर्दिव्यजलैः सदैव,
गङ्गादयो यं परिपावयन्ति।
श्री–शारदा–गीत–यशः प्रशस्ति–
र्देशश्चिरं भातु स भारताख्यः।। (गां०च० 1, 2)
शारदा यत्र रमते नानारूपवती शुभा।
देशः सोऽयं विभातीह रम्यः 'कश्मीर'–संज्ञकः।।

इसी तरह के भाव नेहरू चरितम् में अन्यत्र भी मिलते हैं। (नेहरू च० 2/1–11, 17–20, 5/17–21, 8/14–26)

कवि के मत में देशसेवक ही महान होता है। जो मनुष्य राष्ट्रसेवा में तल्लीन रहता है, परहित में रत रहता है। उसका जीवन ही श्लाघनीय है, जो मानव इससे इतर कार्य करता है उसके जन्म लेने से या धौंकनी के समान फूले हुए आकार से क्या प्रयोजन–

यो मानवो नैव करोति सेवाम्,
जीवेषु सर्वेषु च प्रेमभावैः।
किं तस्य भस्त्राकृतिशीलनेन,
जनस्य जातेन कु–जन्मना वा।। (गा०च० 62)
ये मानवा मनुजतां परिपाल्यन्तो
राष्ट्रोन्नतौ निजधियं विनियोजयन्ति।
ते वन्दनीय चरणा उभयत्र नूनं
लब्ध्वा यशोऽतिविमलं सततं जयन्ति। ने०च० 4/14

अर्थात् जो मनुष्य मानवता का परिपालन करते हुए राष्ट्र की उन्नति में अपनी बुद्धि को लगा देते हैं। वे इस लोक तथा परलोक में निर्मल कीर्ति को प्राप्त करते हैं। (ने०च० 1/11)

डॉ. राका शर्मा
Reader, संस्कृत विभाग,
एन०के०बी०एम०जी० कॉलिज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

राष्ट्रहित के लिए जो धन, वैभव, पुत्र, पत्नी, सांसारिक सुखों का परित्याग कर देता है। वस्तुतः वही श्रेष्ठ है। (ने०च० 1/12)
राष्ट्रभक्त अपने देश को विपत्ति में नहीं देख सकता है। राष्ट्र प्रेमी कवि भी जनता की विपत्ति को देखकर असहज हो जाता है। उसकी असहजता, दुःख इस रूप में प्रकट हुआ है– अंग्रेज दास बनाए गए लोगों को तो पीड़ित करके कारागार में डाल ही देते हैं। बड़े–बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों को भी मच्छर, खटमल, कीड़ों की तरह समझकर नित्य दुःखी धिक्कृत एवं अपमानित करते हैं। (ने०च० 13/16–17)
गाँधी जी भी भगवान् से पराक्रम प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं ज्ञानकैकचक्षु! आप भारतबंधुओं की विपद्दशा को क्यों नहीं देख पा रहे हैं? (गा०च० 63)।
भारत की दुर्दशा दृष्टव्य है–

मानवता दानवता में परिणत होती जाती है।
मर्यादा–सुर–तटिनी भी दुर्बल होती जाती है। उद्बोधन 8
भातृत्व हुआ हालाहल, गौरव पद–दलित हुआ है।
वह महिमामय भारत अब, दुःशासन–कलित हुआ है।
(उ० 10)

कवि का मत है कि यदि देश की जनता उत्साह सम्पत्ति से युक्त हो जाए तो उसी समय विपत्तियों का नाश हो जाता है। (गा०च० 77) शक्ति के बिना सांसारिक यात्रा सफल नहीं होती है। (ने०च० 10/14)
राष्ट्र की एकता का सूत्र है विरोधी भावों का परित्याग, आपसी सौहार्द्र एवं प्रेम। गाँधी जी भी विरोधी भावों को विलीन करने, परस्पर प्रेमधनी बनने पर बल देते हैं। (गा०च० 81) न कोई वर्णभेद है, न जाति भेद, न सम्प्रदाय भेद। सुख शान्ति के लाभ में सभी स्त्री–पुरूष समानाधिकारी है। भाषा का विवाद नहीं होना चाहिए। मिल–जुलकर, एकजुट होकर राष्ट्र की सेवा में लग जाना चाहिए। (ने०च० 15/31–32)
कायरता समस्त दुःखों की जननी है। महापाप है आगे बढ़ना व जीतना ही वीरों का धर्म होता है–
कायरता से बढ़कर भी क्या कोई पाप महा है?
अन्तिम श्वासों तक लड़ना वीरों का धर्म कहा है। (मणिनिग्रह 27)
देशवासियों में निर्भीकता होना अत्यावश्यक है। अतः नेहरू जी ने अपने भाषणों के माध्यम से लोगों के मन में व्याप्त अंग्रेजों के भय को समाप्त कर निर्भीक बनने का उपदेश दिया। (ने०च० 13/27) गाँधी जी ने भी परस्पर–शासक–शास्य भाव के कारण पारस्परिक तीक्ष्णता अत्यधिक बढ़ जाने पर भी सत्य एवं अहिंसा द्वारा जनता के मन से भय समाप्त कर दिया। (गा०च० 91)

''साहस में श्री रहती है'' सिद्धान्त यही वीरों का (म०नि० 33)

क्या बिना शक्ति–सम्बल के सम्भव है कभी सफलता? (म०नि० 123)
राष्ट्र की सेवा का व्रत तलवार की धार के सामने होता है। प्राण न्यौछावर करके भी, कमर कसकर देश की निरन्तर सुरक्षा करनी चाहिए। (ने०च० 17/28)
राष्ट्रभक्तों के उत्साह, उद्योग, दुराचार, भ्रष्टाचार, विध्वंसन से ही राष्ट्र की उन्नति होती है।

कमपन, भय, गात्र–शिथिलता वीरों का मार्ग नहीं है।
प्रतिपक्ष इन्हें अपनाए, वीरों का मार्ग यही है। (3.24)
सिंहीसुत होकर ग्रस लो, रिपुकुल–कमनीय–कलाधर।
खर शर वर्षा से प्लावित कर दो प्रतिपक्ष–धराधर।। (3.25)
हो रुद्र रुप अरिदल में, बढ़ चल तू अविचल गति से।
उद्दीप्त सिंह सम होकर रिपुदल दल अविरल गति से। (3.27)
चल प्रलयकाल बनकर तू शोणित की नदी बहा दे।
चिर सञ्चित पातक पोषित दुर्गम अरि दुर्ग ढहा दे। (3.28)

आशा, विश्वास, कर्मवीर, साहसी वीर पुरूष ही सिंह की भाँति अपने राष्ट्र को पतन से निकालने में सक्षम होते हैं।

कर्त्तव्य–किरण् रञ्चित हो, भारत दिनकर चमकेगा।
'उत्तिष्ठ' जाग्रत, कहकर भूतल–गुरु–सम चमकेगा।। (3.2.4)

राष्ट्रभक्त, राष्ट्र के कल्याण की कामना करता है। वह सब कुछ कहता है और चाहता है जिससे राष्ट्र की सुख, समृद्धि, शान्ति, शालीनता और मान–मर्यादा न केवल सुरक्षित रह सके अपितु विकसित भी हो सके–

नैव वञ्चकता क्वापि, नापि क्षुत्क्षामकण्ठता।
न चापि दुर्बलाघातो, मम देशे भवेत्क्वचित्।।
सर्वत्र समता देवी पूज्यमाना भवेदिह।
सर्वदाऽभ्युदयोभूयादित्यास्तां तत्समीहितम्।।
(गा०च० 109, 110)

इस संसार में जीव सदा आते जाते रहते हैं और अपना पेट भी भरते रहते हैं, जो श्रेष्ठ भावों वाले महानुभाव दूसरों के हितार्थ जीते हैं उन्हीं का स्मरण युगों तक किया जाता है। उनका ही जीवन धन्य है–

आयान्ति यान्ति जगतीह सदैव जीवाः
स्वीयोदरञ्च सुचिरं परिपूरयन्ति।
जीवन्ति ये परहिताय वरेण्यभावा–
स्तानेव कानपि मुदा मनसा स्मरामः।। (ने०च० 18/81)

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रमाकान्त शुक्ल– ''संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना'', ले० डॉ. हरिनारायण दीक्षित, प्रास्ताविकम्, पृष्ठ आठ, देववाणी परिषद्, दिल्ली, 1984
2. डॉ० हरिनारायण दीक्षित– संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना, पृष्ठ 27
3. श्री नेहरुचरितम्
4. श्री गान्धिचरितम्
5. मणिनिग्रह
6. उद्बोधनम्